प्रकाशन की तिथि 01.05.2019

ओ३म्

एक प्रति मूल्य: रू. 4.00

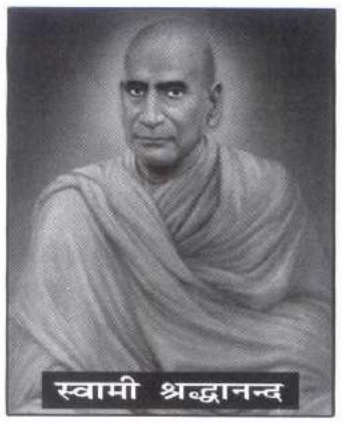

शुद्धि समाचार

सन् 1923 में स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा स्थापित

भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा का मासिक मुखपत्र

माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:। अथर्ववेद 12.1.12
भूमि मेरी माता है और मैं उस मातृभूमि का पुत्र हूँ।

वर्ष 42 अंक 5

''शुद्धि ही हिन्दू जाति का जीवन है''

वार्षिक शुल्क : 50 रूपये
आजीवन शुल्क : 500 रूपये

मई 2019 विक्रम सम्वत् 2076 वैशाख-ज्येष्ठ

सनातन धर्मी नेता - पं. मदनमोहन मालवीय

दूरभाष : 011-23857244

परामर्शदाता: श्री हरबंस लाल कोहली श्री चतर सिंह नागर श्री विजय गुप्त श्री सुरेन्द्र गुप्त

प्रबन्धक: श्री नरेन्द्र मोहन वलेचा

जयन्ती 28 मई पर विशेष

स्वातन्त्रय वीर सावरकर

आरम्भिक जीवन- यह उस काल की गाथा है जब हमारा भारत अंग्रेज साम्राज्यवादियों की दासता की श्रृंखलाओं में जकड़ा हुआ छटपटा रहा था। भारत का जनमानस दासता की उन श्रृंखलाओं को तोड़ने के लिए सब प्रकार के प्रयत्न कर रहा था। 1880 और 1890 का हमारे देश का इतिहास अत्यन्त अन्धकारमय पृष्ठों वाला चल रहा है। इस दशक तक पहुँचते-पहुँचते हमारा देश राजनीतिक दृष्टि से पतित, सामाजिक दृष्टि से अपमानित तथा आर्थिक दृष्टि से सर्वथा क्षीण हो चुका था। यह वह काल था जब स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द और महात्मा राणाडे जैसे अध्यात्मवादी सुधारक अपना कार्य सम्पन्न कर राष्ट्रीय मंच से तिरोहित हो चुके थे। इन लोगों ने भारतीयों को दासता की चिर निद्रा से जगाने का बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया था।

इसी प्रकार नामधारी रामसिंह कूका और क्रान्तिकारी वासुदेव बलवन्त फड़े के विद्रोह ने भी भारतीयों की विचारतन्त्री को झकझोरने का कार्य किया था। लोकमान्य तिलक यथाशक्ति अपनी ओर से यत्न कर रहे थे। उधर देश के पूर्वी भाग में बाबू आंनन्दमोहन बोस और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जन-जन में नवजीवन का संचार करने में लीन थे। भारत में क्रान्ति के बीज पुन: पनपने लगे थे। इसलिए भारतीय क्रान्ति को पनपने से पूर्व ही समाप्त कर देने के विचार से अंग्रेज सरकार ने एक कुटिल चाल चली। ब्रिटिश सरकार के सेवानिवृत्त अंग्रेज एवं थोड़े से भारतीय उच्चाधिकारियों के सम्मिलित प्रयास से 28 दिसम्बर, 1885 को इन्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना करवाने में अंग्रेज सरकार का मनोरथ सफल हो गया।

अंग्रेज उच्चाधिकारी वर्ग पिता और भारतीय उच्चाधिकारी वर्ग रूपी माता की मानस सन्तान इन्डियन नेशनल कांग्रेस के जन्मदाता सेवानिवृत्त अंग्रेज उच्चाधिकारी सर ए.ओ. ह्यूम को इसका प्रथम प्रधान नियुक्त किया गया। क्योंकि यह अंग्रेजों द्वारा अंग्रेज सरकार के हित के लिए

स्थापित संस्था थी। अत: आरम्भ में इसके अधिवेशनों में सर्वप्रथम अंग्रेज राजा के सुख समृद्धिमय सुदीर्घ जीवन की कामना की भगवान से प्रार्थना की जाती थी। अत: संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि वह काल बहुत ही शोक और लज्जा से परिपूर्ण काल था जिसका विकल्प या तो उस स्थिति में सुधार हो सकता था फिर क्रान्ति।

जन्म एवं बाल्यकाल- सन् 1883 में स्वामी दयानन्द अपने पार्थिव जीवन के अन्तिम चरण पर थे और विद्रोही वासुदेव बलवन्त फड़के भारतीय जनतन्त्र की स्थापना का स्वप्न संजोए अदन में समाधिस्थ हो गए थे। इसी काल में 28 मई सन् 1883 को सोमवार को प्रात:काल 10 बजे हमारा चरित्र नायक वीर विनायक दामोदर सावरकर इस धरा पर अवतीर्ण हुआ था। उसी काल की दो अन्य उल्लेखनीय घटनाएँ हैं- सावरकर के जन्म से 75 दिन पूर्व लन्दन में सर्वहारा वर्ग के कथित मसीहा कार्ल मार्क्स का इस संसार से चुपचाप विदा ले जाना और विनायक के जन्म के 62 दिन बाद इटली के भाग्य विधाता मुसोलिनी का जन्म होना।

सावरकर का जन्म उस चितपावन ब्राह्मण कुल में हुआ था जिसने इससे पूर्व भी अनेक देशभक्त महापुरुषों को जन्म दिया था। मराठा साम्राज्य के प्रथम पेशवा बालाजी विश्वनाथ, 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानायक नाना साहब, प्रसिद्ध क्रान्तिकारी वासुदेव बलवन्त फड़के, प्रख्यात चाफेकर बन्धु, महादेव गोविन्द राणाडे, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, ये सभी जिन्होंने स्वतन्त्रता देवी की कीर्तिपताका फहराने का संकल्प लिया था, उसी चितपावन कुल में उत्पन्न हुए थे। कालान्तर में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार भी उसी कुल के दीपक बने। वीर विनायक सावरकर के पूर्वज मूलतया महामुनि परशुराम की लीलास्थली कोंकण के निवासी थे।

कोंकण में उनके पूर्वजों की अच्छी ख्याति थी और अपनी विद्वता के लिए वे दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे। दामोदर पन्त की चार सन्तान थीं-तीन पुत्र तथा एक कन्या। सबसे बड़े पुत्र का नाम गणेश, उसके बाद विनायक, फिर कन्या मैना और सबसे छोटे थे नारायण। देशभक्ति और स्वाभिमान तो इन चारों को ही घुटी में मिला था।

सावरकर दम्पति रामायण और महाभारत का नित्य प्रति अध्ययन और पाठ किया करते थे। उनकी कहानियाँ अपने बच्चों को सुनाना उनका नित्य का नियम था। इसके अतिरिक्त वे छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप तथा पेशवाओं की वीर गाथाएँ एवं वीरता से परिपूर्ण लावणी और पोवाड़े भी अपनी सन्तति की नियमित रूप से सुनाते तथा उन्हें कंठस्थ करने के लिए प्रेरित करते थे। समय-समय पर माता राधाबाई अपने पुत्र गणेश को कहती रहती थीं कि वह अपने भाई-बहिनों को रामायण और महाभारत पढ़कर सुनाए। इन सब गाथाओं, आख्यानों और कविताओं का हमारे चरित्र नायक विनायक के विकास में बड़ा योगदान था। छह: वर्ष की आयु में बालक विनायक को गाँव

(शेष पृष्ठ 6 पर)

शुद्धि समाचार में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशन का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

उत्तम चरित्र निर्माण की विशेषताएँ

- पं उम्मेद सिंह विशारद वैदिक प्रचारक

श्रद्धेय पाठक जी,

इस वैज्ञानिक युग में मानव ने बहुत भौतिक उन्नति कर ली है और नित्य नये-नये ब्रह्माण्ड के रहस्यों की खोज में लगा हुआ है। मनुष्य ने अपने बल से समुद्र की छानबीन कर डाली, आकश में उड़ा तो तारों नक्षत्रों व ग्रहों की छानबीन कर डाली। नदियों के प्रवाह मोड़ दिये, वायु को वश में करके नाना यान बना डाले, आग बरसाने वाली गर्मी में शीतल वायु का श्रोत्र कर डाला, जल का मन्थन करके विद्युत अविष्कार कर डाला और सम्पूर्ण पृथ्वी को माप डाला, अखण्ड काल की गणना कर डाली। सम्पूर्ण भूतों पर विजय प्राप्त करके समस्त शक्तियों को जान लिया। नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण कर डाला, इससे मानव गर्वित हो उठा और यह गर्व होना मनुष्य का अनुचित भी नहीं है। किन्तु इतना सब कुछ करने के बाद हे मनुष्य तूने कभी सोचा है तेरा रूप चरित्र क्या है। तूने अपने आपको देखा है। इस पंचतत्व के शरीर को जानने का कभी प्रयत्न किया है। ज्यों-ज्यों भौतिक उन्नति मनुष्य कर रही है त्यों-त्यों नैतिक चरित्र भी गिरता जा रहा है, आइए इस पर विचार करते हैं।

पन्चस्वन्तः पुरुष आ वियेश (यजु.)- मानव को उत्तम चरित्र बनाने के लिए निम्न पांच बातों का ध्यान रखना चाहिए। पुरुष के भीतर स्थित है। प्रत्येक पुरुष अपने आप में प्रविष्ठ है, वहीं परिवार में प्रविष्ट है और एक राष्ट्र में प्रविष्ट है, विश्व में प्रविष्ट है। प्रत्येक अपने आप में एक इकाई है। किसी परिवार का, समाज का, राष्ट्र का, विश्व का अंग है। मानव चरित्र की पांच शाखाएं हैं। इन पांच चरित्रों पर चल कर ही मानव ईश्वर पुत्र कहला सकता है।

उत्तम चरित्र की पांच शाखाएं- (1) वैयक्तिक चरित्र (2) पारिवारिक चरित्र (3) सामाजिक चरित्र (4) राष्ट्रीय चरित्र (5) वैश्व चरित्र। आइए इन पर क्रमशः विवेचना करते हैं।

(1) वैयक्तिक चरित्र- इसका सम्बन्ध अपने आपसे है, व्यक्तिगत जीवन जीने के लिए सात गुण होना आवश्यक है। 1. सुश्रुति, 2. सुवाणी, 3. सुस्नेह, 4. सुसेवा, 5. सुसंयम, 6. निर्लोभी, 7. निस्वार्थी।

ये सात उत्तम चरित्र मानव के मूलाधार हैं। कलेवर बढ़ने के कारण केवल सांकेतिक गुणों को प्रस्तुत किया है। शिष्ट व्यक्ति अष्टिता का उत्तर शिष्टता से देता है। अभद्र का भद्रता से, अपमान का मान से, बुराई का भलाई से, अन्याय का न्याय से देता है।

(2) पारिवारिक चरित्र-यदि वैयक्तिक चरित्र उत्तम है तो पारिवारिक चरित्र भी उत्तम होता है। परिवार में क्रोध मन मुटाव, रूष्ट होना, बोल चाल बन्दर करने का कोई स्थान नहीं है। प्रत्येक सदस्य का ध्यान रखना चाहिए, एक दूसरे की भावनाओं की कदर करनी चाहिए। एक पूजा पद्वति, सात्विक संस्कार, पवित्र वैदिक धर्म मार्ग पर चलना तथा सात्विक खान-पान होना चाहिए। परिवार में प्रत्येक सदस्य को निस्वार्थ भाव से तथा अनुशासन से रहना चाहिए। क्योंकि शास्त्रों में कहा गया है कि-

अनुवृतो पितु मात्रा भवतु समना।
समयंच सव्रता भूत्वा वांच वदतु शान्तिवाम॥
सन्तुष्टो भार्य्या भर्ता भर्ता भार्या तथैवच।
यश्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥

3. सामाजिक चरित्र- मानव सामाजिक प्राणी है। उसे कदम-कदम पर एक दूसरे की सहायता की आवश्यकता होती है। उसे सर्वहितकारी नियम पालने चाहिए। उसे सदैव समाज को व्यवस्थित बनाने के लिए निम्न नियमों का पालन करना चाहिए। 1. अहिंसा, 2. सत्याचरण, 3. अस्तेय, 4. ब्रह्मचर्य, 5. अपरिग्रह। जो मनुष्य सदैव अहिंसा का पालन करेगा, वह सत्यमार्गी होगा, जो सत्यमार्ग पर चलेगा, वह संयमी होगा, उसमें त्याग की भावनायें होगी।

उदाहरण-हम एक कप चाय पीते हैं तो विचार करें कि उसमें कितने आदमियों के सहयोग से हम एक कप चाय पीते हैं, जैसे किसी ने खेत में गन्ना बोया, किसी ने चीनी बनाई, किसी ने चाय पत्ती बनाई। किसी ने गाय पाली और दूध उपलब्ध कराया, किसी ने चाय बनाई, पिलाई, तब हम एक कप चाय पी पाते हैं। ऐसे ही हम समाज में प्रत्येक वस्तु का उपभोग कर रहे हैं अर्थात् हम समाज में एक दूसरे के सहारे के बिना जीवन नहीं जी सकते हैं। इसलिए हमें सामाजिक चरित्र में आदर्श होना चाहिए। मनुष्य को सदैव आत्मा संतोषी होना चाहिए।

उदाहरण-दो वृक्षों का वृतान्त-एक वृक्ष ने दूसरे से कहा कि भैय्या जब तक मैं हरा-भरा था, तब तक यही लोग मेरे पास झोलियां लेकर आते थे और मेरी छांव में विश्राम करते थे और आज जब से मैं सूख गया हूँ, यही लोग कुल्हाड़ा लेकर मुझे काटने आ रहे हैं। दूसरे वृक्ष ने कहा भाई आप इस सोच की अपेक्षा यह सोचते कि आज जब मैं सूख गया हूँ, मर गया हूँ तब भी दूसरे के काम आ रहा हूँ तो कितना आत्म संतोष होता।

4. राष्ट्रीय चरित्र- मातृभक्ति, राष्ट्रभक्ति, राष्ट्र निष्ठा, राष्ट्र सेवा राष्ट्र हेतु बलिदान आदि राष्ट्र की उन्नति के साधन हैं। मानव का सर्वप्रथम कर्तव्य मातृभूमि की रक्षा करना है। राष्ट्र उन्नति में सदैव राष्ट्र की उन्नति रक्षा, श्रद्धा के भाव रख कर प्रत्येक सामाजिक कार्य करने चाहिए। राष्ट्र की उन्नति रक्षा, श्रद्धा के भाव रख कर प्रत्येक सामाजिक कार्य करने चाहिए। राष्ट्र की उन्नति स्वच्छ विचार, समान अधिकार, संवैधानिक मान्यता, राष्ट्र प्रेम और सर्व हितकारी नियमों का पालन करना आदि राष्ट्र की रक्षा में सहायक होते हैं। उदाहरण-इतिहास प्रमाण है, लाखों व्यक्तियों ने राष्ट्र रक्षा में निस्वार्थ भाव से अपना बलिदान दिया है, हंसते-हंसते फाँसियों को चूमा है। आज भी यदि नेतुत्व के अन्दर राष्ट्र हित की भावनाएं आज जाए तो हमारा राष्ट्र सर्वोत्तम सुख शान्ति, निर्भय व सदैव सुरक्षित रह सकता है।

5. वैश्व चरित्र-अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों में शुद्धता व आचार संहिता का पालन राष्ट्र हित में विदेश नीति और सर्वप्रथम राष्ट्र की मर्यादा को रखकर नीतियां बनाना और वस्तुओं के आयात, निर्यात में राष्ट्र हित में व्यापार करना, सर्वमानव हितकारी नियमों के पालन के लिए हथियारों का प्रतिबन्ध/एक दूसरे के क्षेत्र में अतिक्रमण न करना, सीमाओं का उल्लंघन न करना, परस्पर प्रत्येक राष्ट्रों को सदैव भाईचारा की भावनाओं से व्यवहार करना चाहिए, तभी विश्व में शान्ति रह सकती है।

उपसंहार निवेद- ईश्वर से संसार का संविधान, वेदों को बनाया है और मानवों को धर्म वैदिक, धर्म संस्कार, संस्कृति, सभ्यता पर चलने का वेदों में निर्देश दिया है। व्यक्तिगत स्वार्थ, अन्धविश्वासी धर्म पालन, काल्पनिक ईश्वर पूजा, भ्रष्टाचार से धन अर्जित करना, सदैव निजी स्वार्थ में लगा रहना आदि गुणों का निषेध किया है।

ईश्वर कृपा से सदियों उपरान्त भारत रत्न, राष्ट्र पिता माह, महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने संसार को ईश्वरीय संविधान वेदों की ओर लौटाया, उन्होंने सदा-सदा के लिए ईश्वर संविधान का प्रचार होता रहे, समाज के लोग ईश्वर को व ईश्वरीय शिक्षा वैदिक मार्ग को भूल न जाए। उसके सतत प्रसार के लिए आर्य समाज का गठन करके एक चिर स्थाई योजना एवं सन्देश का मार्ग बनाया है। आर्य समाज मानव मात्र के आत्म उत्थान व ईश्वर से जोड़ने का विस्तृत कार्य कर रहा है और इस भौतिक युग में सर्वोच्च ईश्वरीय धर्म पालन का संगठन है। आइए यदि हमारे चरित्र में कहीं गिरावट आ रही है या आ गई है तो हम आज से ही उपयुक्त संदेश का पालन करने में अग्रणी हो जाएं।

स्वभाव

शीतल और शान्त स्वभाव के व्यक्ति की ही शिक्षा, दीक्षा, संस्कृति और सभ्यता सफल और सार्थक होती है।

भाषा, ज्ञान और धर्म का आदि स्रोत वेद

— मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

आज संसार में अनेक भाषायें और अनेक मत–मतान्तर प्रचलित हैं। मत–मतान्तरों को ही लोग धर्म मानने लगे हैं जबकि इन दोनों में अन्तर है। मत–मतान्तर इतिहास के किसी काल विशेष में किसी मनुष्य विशेष द्वारा वा उसके बाद उसके अनुयायियों द्वारा उसके नाम पर उनकी मान्यताओं के आधार पर चलाया जाता है जबकि धर्म का आरम्भ सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर से होता है। मत–मतान्तर अपनी त्रुटियों व न्यूनताओं को छुपाने व उसे ईश्वर प्रदत्त बताने के लिए अपने अपने मत को धर्म कह देते हैं। धर्म शब्द संस्कृत भाषा का शब्द है। संस्कृत से ही हिन्दी व विश्व की अन्य भाषायें बनी हैं। हिन्दी में संस्कृत के अधिकांश शब्द बिना किसी प्रकार के परिवर्तन के स्वीकार कर लिये गये हैं जबकि अन्य भाषायें में संस्कृत शब्दों के स्वरूप कहीं न्यून तो कहीं अधिक बदल गये हैं व कुछ उनके अपने निजी भी शब्द भी हैं। अंग्रेजी व संस्कृत एवं हिन्दी से इतर किसी भाषा में धर्म शब्द का पर्यायवाची शब्द नहीं है। धर्म का अर्थ होता है मनुष्यों के द्वारा श्रेष्ठ मनुष्योचित गुण, कर्म व स्वभाव का धारण वा आचरण। इसमें सृष्टिकर्ता व जगतपति ईश्वर का यथार्थ ज्ञान व उसके गुणों को जानकर उसकी उपासना करना भी सम्मिलित है। ईश्वर की यथार्थ उपासना का संसार में प्रमुख ग्रन्थ योग दर्शन है। योग आत्मा को परमात्मा से जोड़ने को कहते हैं। मनुष्य अपनी आत्मा को जब ईश्वर के गुण कर्म व स्वभाव का विचार कर परमात्मा में अपने ध्यान व चिन्तन को स्थिर करता है तो उसे ईश्वरोपासना कहते हैं। उपासना में ईश्वर के मनुष्य जाति पर उपकारों को भी उपासक द्वारा स्मरण किया जाता है। परमात्मा व आत्मा का सम्बन्ध वैसा ही है जैसा कि माता–पिता के साथ पुत्र का होता है। जिस प्रकार माता–पिता की सत्य आज्ञाओं का पालन सन्तान के लिए धर्म होता है उसी प्रकार ईश्वर की वेदाज्ञाओं का पालन भी सभी मनुष्यों के धर्म होता है। यह भी ध्यातव्य है कि मनुष्य ने न तो ब्रह्माण्ड बनाया न पृथिवी, समुद्र, नदी, पर्वत, वन और अन्नादि पदार्थ। यह सब ईश्वर ने मनुष्यों के लिए बनाये हैं। मनुष्यों को भी ईश्वर ने ही बनाया है। मनुष्यों के लिए जिस जिस चीज की आवश्यकता थी सब ईश्वर ने मनुष्यों को इस सृष्टि के द्वारा दी हैं। देखने के लिए आंखें चाहिये तो आंखे दी। सुनने के लिए कान चाहियें तो श्रवण इन्द्रिय दी। इसी प्रकार से मनुष्यों को अपने कर्तव्यों का ज्ञान चाहिये। यह भी ईश्वर ने मनुष्यों को सृष्टि के आरम्भ में वेद ज्ञान देकर कराया है। वेद में ईश्वर ने तृण से लेकर प्रकृति, आत्मा व ईश्वर सभी का यथार्थ सत्य ज्ञान दिया है।

मनुष्यों को स्वस्थ शरीर व उसमें स्वस्थ ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रियों की अत्यावश्यकता है। मनुष्यों कानों से सुनता और मुंह वा वाक् इन्द्रिय से बोलता है। सुनकर ही वह ज्ञान प्राप्त करता है। माता, पिता व आचार्य उसको ज्ञान कराने वाले मुख्य लोग होते हैं। माता–पिता व आचार्य भी अपने अपने माता–पिता व आचार्य से ज्ञान प्राप्त करते हैं। सृष्टि की आदि में परमात्मा अमैथुनी सृष्टि करते हैं। तब आरम्भ में युवा–स्त्री व पुरुष उत्पन्न होते हैं। उनके माता–पिता व आचार्य नहीं होते। परमात्मा ही उस अमैथुनी सृष्टि के सबसे योग्य चार ऋषियों को चार वेदों का ज्ञान देता है। वही चार ऋषि एक अन्य सबसे योग्य पुरुष ब्रह्मा जी चारों वेदों का ज्ञान कराते हैं। यह ऋषि ही अन्य सभी मनुष्यों के माता–पिता व आचार्य कहलाते हैं। इन्हीं से सभी मनुष्यों को भाषा का ज्ञान सहित वेदों की शिक्षाओं व कर्तव्यों का ज्ञान कराया जाता है। आदि गुरु परमात्मा होता है। वह चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को ज्ञान देता है जिसमें भाषा व उसका ज्ञान भी मुख्य है। ज्ञान भाषा में ही निहित होता है। ज्ञान व भाषा को पृथक नहीं किया जा सकता। ज्ञान होगा तो भाषा अवश्य होगी। संस्कृत हर प्रकार से पूर्ण भाषा है जो ऋषियों को ईश्वर से प्राप्त हुई। लौकिक संस्कृत भाषा वैदिक भाषा का किंचित सरलीकरण है, यह बाद के ऋषियों व विद्वानों द्वारा किया गया है। अतः मूल भाषा भी वेदज्ञान के साथ ही प्राप्त हुई थी व वही किंचित विकारों के साथ व शुद्ध रूप में भी चली आ रही है। देश–काल, भौगोलिक कारणों व मनुष्यों के उच्चारण दोष आदि कारणों से इसमें किंचित परिवर्तन व विकार होना भी सम्भव होता है। अतः इसी प्रकार होते होते सृष्टि की उत्पत्ति के 1.96 अरब वर्ष हो जाने पर संसार में आज सहस्रों भाषायें अस्तित्व में आ गई हैं। सभी भाषाओं की उत्पत्ति प्रायः इसी प्रकार या ऐसे अनेक कारणों से होना सम्भव प्रतीत होती है।

वेदों सहित वेदों पर ऋषियों के उपलब्ध ग्रन्थों का अध्ययन कर धर्म का सर्वांग शुद्ध रूप प्राप्त होता है। यह महाभारत काल व उसके कुछ बाद के वर्षों तक अस्तित्व व व्यवहार में रहा है। इसी को वैदिक धर्म कहते हैं। इसमें किसी अन्य मान्यता व सिद्धान्त को जोड़ने व मिलाने का कहीं अवकाश ही नहीं था। अतः किसी नये धर्म के प्रचलन का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। यह सत्य है कि महाभारत युद्ध के बाद वेद के सत्य अर्थों का यत्र तत्र लोप हो गया था। मूल वेद सुरक्षित रहे और उनकी मध्यकालीन व्याख्यायें भी विद्यमान रहीं। इनमें कुछ भ्रान्तियां थीं। ईसा की अट्ठारहवीं शती में ऋषि दयानन्द सरस्वती (1825–1883) का प्रादुर्भाव रहता है। वह अपने अपूर्व पुरुषार्थ, तप व विद्याबल से वेद व वेदज्ञान को प्राप्त करते हैं और वेदभाष्य सहित अनेक महत्वपूर्ण वैदिक ग्रन्थों की रचना करते हैं। ऋषि दयानन्द जी ने कोई नई बात नहीं कही है। उन्होंने जो कहा व लिखा है वह वही है जो सृष्टि काल के आरम्भ से देश देशान्तर में विद्यमान रहा था परन्तु उनके समय में वह सर्वत्र उपलब्ध नहीं था। उन्होंने उस अलभ्य वैदिक ज्ञान को स्वपुरुषार्थ से प्राप्त किया, अपने विवेक से उसकी परीक्षा व सत्यासत्य का निर्णय किया और उसे देशवासियों के सम्मुख सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने सबल युक्तियों से सिद्ध किया कि मनुष्यों का एक ही धर्म है और वह वेद प्रतिपादित कर्तव्य कर्म व आचरण ही हैं। संसार में जितने भी मत–मतान्तर चल रहे हैं वह अविद्या के काल में चलें जिनकी अब आवश्यकता नहीं है। मत–मतान्तरों में अनेक न्यूनतायें और इनकी अनेक बातें स्त्री व पुरुषों में भेदभाव भी करती हैं। ईश्वरोपासना और वायु–जल–पर्यावरण की शुद्धि हेतु यज्ञ का विधान व विज्ञान की आवश्यक बातों का ज्ञान भी इन मत–मतान्तरों की पुस्तकों में नहीं है। इनसे इन मत के वर्तमान आचार्यों और अनुयायियों की इस रूप में हानि हो रही है कि वह उचित रीति से ईश्वरोपासना एवं अन्य वैदिक कर्मों व अनुष्ठानों को न करने से उससे प्राप्त होने वाले लौकिक व पारलौकिक लाभों से वंचित हो रहे हैं। अतः सभी को वैदिक धर्म की ही शरण लेकर उसी को अपनाना व धारण करना चाहिये। वेदों के आधार पर एक ऐसे समाज, देश व विश्व का निर्माण किया जा सकता है जहां किसी से भेदभाव न होता हो, सब शिक्षित हों, सब अपने अपने कर्तव्यों का पालन करें, सबको उन्नति के समान अवसर मिले, जहां जन्मना जाति व वर्गवाद आदि न हो, लोग मनुष्यों को ही नहीं प्राणीमात्र को ईश्वर की सन्तान व अपना मित्र जानें आदि आदि। वेदों को अपनाकर व उनकी शिक्षाओं के द्वारा विश्व में सुख व शान्ति को स्थापित किया जा सकता है। सृष्टि के आरम्भ से महाभारतकाल पर्यन्त तक के 1.960848 अरब वर्षों तक भारत वा आर्यावर्त्त के आर्यों का ही विश्व में एकमात्र निरन्तर वैदिक धर्म पर आधारित चक्रवर्ती राज्य रहा है जहां सब मनुष्य आध्यात्मिक व भौतिक दृष्टि से सुखी थे। तब न कोई मत–मतान्तर था न उसकी आवश्यकता थी। आज भी नहीं है। आवश्यकता केवल विचार, सोच व चिन्तन बदल कर उचित चिन्तन व सत्य निर्णय करने की है।

देश व विश्व में सुख व शान्ति की स्थापना को लक्ष्य में करके वेद का मंथन किया जाना चाहिये और इससे जो रत्न प्राप्त हों उसे देश व विश्व में विस्तार व वितरण कर एक सत्य मत धर्म की स्थापना करनी चाहिये। ऋषि दयानन्द का सत्यार्थप्रकाश एक ऐसा ही प्रयास था। ऐसे मंथन पहले भी हुए व हुए होंगे। आज इसकी सर्वाधिक आवश्यकता है। ऋषि दयानन्द ने यह कार्य आरम्भ किया था। यह

(शेष पृष्ठ 4 पर)

त्यागपूर्वक भोग

यजुर्वेद के चालीसवें अधयाय के प्रथम मंत्र का अंश **''तेन त्यक्तेन भुंजीथा''** हम मनुष्यों को त्यागपूर्वक भोग करने का आदेश देता है। सुनने और देखने में त्याग और भोग दोनों विपरीतधर्मी प्रतीत होते हैं। सामान्य मनुष्य यही सोचता है कि यदि किसी साधन, सुविधा या वस्तु का भोग ही कर लिया तो उसका त्याग कैसे संभव है और यदि त्याग कर दिया तो भोग कैसे कर सकते हैं। परन्तु यदि चिन्तन करें तो स्पष्ट हो जाता है कि ''ना भोगने का नाम त्याग नहीं है अपितु भोग से ना चिपटने, भोग्य पदार्थों में अनासक्ति, भोग्य पदार्थों के संग्रह की भावना को छोड़ने का नाम ही त्याग है।''

मनुष्य की जीवन यात्रा के उत्तरोतर क्रमिक विकास पर दृष्टिपात करें तो त्याग का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। जिस प्रकार उपर छत पर चढ़ने के लिए हमें सीढ़ी दर सीढ़ी उपर चढ़ना होता है और सीढ़ियां चढ़ने के लिए पहली सीढ़ी को छोड़ने के उपरान्त ही हम दूसरी सीढ़ी पर पांव रख सकते हैं। यानि दूसरी तीसरी चौथी सीढ़ी दर सीढ़ी उपर जाने के लिए उससे पूर्व की सीढ़ियों को छोड़ना या उनका त्याग करना अनिवार्य हो जाता है। यदि व्यक्ति पहली सीढ़ी पर ही चिपका रहे या खड़ा रहे तो वह चाह कर भी उपर नहीं चढ़ पाएगा। इस दृष्टांत से यह तो स्पष्ट है कि उपर चढ़ने के लिए लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सीढ़ियों अर्थात साधन का प्रयोग अत्यंत आवज़्यक है लेकिन इस साधन का प्रयोग साधाक द्वारा सदा साधय की प्राप्ति के लिए ही किया जाना चाहिए। यदि साधक साधन को ही साध्य मान ले और उससे चिपक जाए तो वह कभी भी साध्य की प्राप्ति नहीं कर सकता। यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि साधन कभी भी साधक के साथ नहीं चिपकता। कभी सीढ़ी बंधन बन कर पथिक के पैरों को नहीं बांधती यह तो पथिक ही आलस्य वा प्रमादवश सीढ़ी पर खड़ा जाता है। साधन से प्रेम करके उससे चिपकने वाला व्यक्ति कभी अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। मधुमक्खी यदि अपने बनाए मधु में ही फंस जाए तो छटपटा कर मर जाती है। ठीक यही स्थिति हम मनुष्यों की ईश्वर प्रदत्त प्रकृति इसके सौंदर्य ऐश्वर्य को लेकर है।

परन्तु यह भी ठीक है कि सृष्टि के रचयिता परमपिता परमेश्वर ने इस सृष्टि का निर्माण इस सृष्टि में रहने वाले जीवों के उपभोग व उपयोग के लिए किया है और जीव का अधिकार है कि वह इन ईश्वर प्रदत्त साधनों का उपयोग करे। त्रैतवाद के सिद्धांत को पुष्ट करता सुप्रसिद्ध वेद मंत्र **''द्वा सुपर्णा...''** स्पष्ट रूप से जीव द्वारा प्रकृति के फल के भोग के अधिकार को स्थापित करता है। परन्तु **तेन त्यक्तेन भुंजीथा** मंत्र में इस अधिकार की सीमा स्पष्ट है। यानि मनुष्य त्यागपूर्वक भोग करे। इसके लिए हमें यह समझना होगा कि इन साधनों के प्रयोग का अधिकार ईश्वर प्रदत्त है। और इन साधनों के ईश्वर प्रदत्त होने के कारण इनका उपयोग साध्य की प्राप्ति के लिए किया जाना चाहिए।

जगत के उपयोग में त्यागभाव धर्म का मुख्य अंग है। त्याग के बिना लक्ष्य की प्राप्ति संभव नहीं है। संसार के समस्त अधिकार सेवा और त्याग से प्राप्त होते हैं। मनुष्य का जीवन सदा देने के लिए होता है लेने के लिए नहीं। जैसे बादल उँचाई को पाकर सबके उपकार के लिए बरसते हैं वैसे ही मनुष्य भी अपने जीवन में उपर उठकर दूसरों का उपकार किया करे। खुशी का सबसे बड़ा रहस्य यही त्याग की भावना है। खुशी इस बात पर निर्भर करती है कि आप क्या दे सकते हैं। त्याग के बिना ना तो ईश्वर प्रेरणा होती है और ना ही प्रार्थना। त्याग के समान कोई सुख नहीं होता। इसलिए मनुष्य को साधक के रूप में ईश्वर प्रदत्त साधनों का उपयोग उपभोग त्यागपूर्वक करते हुए अपने लक्ष्य साध्य की प्राप्ति के लिए करना चाहिए।

नरेन्द्र आहूजा 'विवेक'
602 जी एच 53, सैक्टर 20, पंचकूला
मो. 09467608686, 01724001895

(पृष्ठ 3 का शेष)

कार्य अधूरा पड़ा है। यह कार्य केवल ऋषि दयानन्द के अनुयायियों का ही कार्य नहीं है अपितु यह संसार के सभी मनुष्यों का अपना कार्य है। इसी से विश्व का कल्याण होने के साथ आध्यात्मिक व भौतिक उन्नति हो सकती है और उससे संसार के सभी लोग लाभान्वित हो सकते हैं।

वेद धर्म के आदि स्रोत है। सत्य व यथार्थ धर्म वही है जो वेदों में कहा गया है। वेद से बाहर व उसके विपरीत जो कुछ है वह धर्म नहीं है। अन्य मत मतान्तरों की जो अच्छी बातें हैं वह वेदों से ही वहां गई हैं। उनसे किसी का कोई विरोध नहीं है। मत मतान्तरों की जो अपनी बातें हैं जिनसे संसार के लोगों में भेदभाव होता है और जो अपने मत को अच्छा व दूसरों को निम्नतर मानते हैं, उसमें परिवर्तन व संशोधन होना चाहिये। इसके लिए ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ के अन्त में संसार के सभी मनुष्यों के मानने योग्य धार्मिक सिद्धान्तों को लिखा है जिसे उन्होंने 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' नाम दिया है। उसकी भूमिका अतीव महत्वपूर्ण है। उसे लिखकर इस लेख को विराम देंगें। वह लिखते हैं 'सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिस को सदा से सब मानते आये, मानते हैं और मानेंगे भी। इसीलिये उस को सनातन नित्य धर्म कहते हैं कि जिस का विरोधी कोई भी न हो सके। यदि अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मत वाले के भ्रमाये हुए जन जिस को अन्यथा जानें या मानें उस का स्वीकार कोई भी बुद्धिमान् नहीं करते किन्तु जिस को आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारी, पक्षपातरहित विद्वान मानते हैं वहीं सब को मन्तव्य और जिसको नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता। अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से ले कर जैमिनिमुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं जिन को मैं भी मानता हूं, सब सज्जन महाशयों (देश–विदेश के बन्धुओं) के सामने प्रकाशित करता हूं।' इसके बाद ऋषि दयानन्द जी ने 51 विषयों पर सभी ऋषियों द्वारा मान्य स्वयं के सिद्धान्त लिखे हैं। इससे पूर्व मनुष्य किसे कहते हैं यह भी उन्होंने अपने प्रभावशाली शब्दों में बताया है। अन्य महत्वपूर्ण बातें भी कहीं हैं। इसे सत्यार्थप्रकाश में पढ़ना ही उचित होगा। वेद धर्म का आदि स्रोत है। सृष्टि के अन्त तक वेद ही सर्वाधिक प्रमाणिक रहेंगे। आने वाले समय में संसार के लोग वेदों का महत्व समझेंगे और अपने हित में इस अपनायेंगे। इसी के साथ इस चर्चा को विराम देते हैं। –196 चुक्खूवाला–2,

देहरादून–248001, फोनः09412985121

प्रेम

- ❑ प्रेम की आंखें हैं और हृदय भी किन्तु वाणी नहीं।
- ❑ प्रेम पहली निगाह या पहली मुस्कान में दो आत्माओं को संयुक्त करता है, दो शरीरों को नहीं। यदि उसने दो शरीरों को युक्त किया है तो निश्चय ही वह प्रेम नहीं है, विषय और विकार है।
- ❑ प्रेम केवल वियोग में बोलता है और दोनों ओर से प्रत्येक कहता है, 'तू पुनः आयेगा/आएगी क्योंकि मैं तुझे अब भी प्यार करता/करती हूँ।'
- ❑ प्रेम में भेदभाव नहीं। दोनों में से प्रत्येक दूसरे का प्रेमी है और प्रेमाधार भी।
- ❑ जब प्रेम आत्मा को परमात्मा से युक्त करता है तब आत्मा प्रेमी है और परमात्मा प्रेमाधार।
- ❑ बहुत हैं जो परमात्मा को प्यार करते हैं किन्तु बहुत थोड़े हैं जिन्हें परमात्मा प्यार करता है।

स्वभाव

मनुष्य का स्वभाव ही उसके जीवन का सही चित्र है। उग्र और उत्तेजित स्वभाव के व्यक्ति की शिक्षा, दीक्षा, संस्कृति और सभ्यता सब बेकार है।

जयन्ती 09 मई पर विशेष

आदि शंकराचार्य

आदि शंकराचार्य जी का नाम स्मरण होते ही भीष्म पितामह एवं महर्षि दयानन्द की तरह अखण्ड ब्रह्मचारी, वेदोद्धारक तथा सम्पूर्ण राष्ट्र को सांस्कृतिक रूप से सुसंगठित करने वाली महान विभूति की प्रतिमूर्ति उपस्थित हो जाती है। स्वामी शंकराचार्य का जन्म केरल के एर्नाकुलम जिले के कालड़ि ग्राम में हुआ था। कालड़ि कोचनी हवाई अड्डे से केवल 5-6 कि.मी. दूर है। इसके पास ही पेरियार नदी बहती है। पेरियर शब्द का अर्थ बड़ी और पवित्र नदी। यहाँ स्वामी शंकराचार्य के नाम से संस्कृत विश्वविद्यालय है। मन्दिर के प्रवेश द्वारा पर हिन्दी में लिखा है-श्री आदि शंकराचार्य जन्मभूमि क्षेत्रम्, पूर्णा नदी तटम् कालड़ि। कालड़ि का पुराना नाम सासालम है। यह दक्षिण भारत का सांस्कृतिक द्वार कहलाता है। उनका जन्म वैशाख शुक्ल पंचमी, संवत 745 रविवार को हुआ था।

स्वामी शंकराचार्य के समय पूरे देश में बौद्ध-मत का बहुत प्रभाव था। अनेक वैष्णव, शैव शाक्त आदि पुरातन वैदिक (हिन्दू) धर्म छोड़कर बौद्ध बन रहे थे। देश में अनेक स्थानों पर बौद्ध-विहार स्त्री-पुरुषों के लिए खुले हुए थे, जिन्हें राज्यों की ओर से पर्याप्त सहायता पहुँचाई जाती थी। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणपति आदि देवों को लोग भूलने लगे थे। वेद, दर्शन, उपनिषद् तथा गीता की सर्वत्र उपेक्षा की जा रही थी। इनके समकालीन कुमारिल भट्ट भी थे, जो स्थान-स्थान पर जाकर बौद्ध विद्वानों को शास्त्रों में पराजित करते रहे, समाज में सर्वत्र अकर्मण्यता, आलस्य, भीरूता व्याप्त हो गई थी। ऐसे कठिन और गंभीर समय में स्वामी शंकराचार्य का धार्मिक क्षेत्र में प्रवेश कर वैदिक धर्म की पुनर्स्थापना अपने आप में महान और महत्वपूर्ण कार्य था। स्वामी शंकराचार्य ने बौद्ध विद्वानों से बौद्ध-मत के सूक्ष्म सिद्धान्तों का ज्ञान ग्रहण किया। इसके लिए आपने भ्रमण कर बौद्धों से शास्त्रार्थ कर वैदिक धर्म की स्थापना करने का कार्य प्रारम्भ किया।

स्वामी शंकराचार्य की प्रचार यात्रा-जिन दिनों देश में यातायात के साधन तथा सुगम मार्ग नहीं थे, उन दिनों अर्थात् आज से 12 सौं वर्षो के पूर्व स्वामी शंकर ने पद-यात्रा कर सम्पूर्ण भारत में सांस्कृतिक तथा धार्मिक एकता स्थापित की। दुर्देव वश स्वामी शंकराचार्य को जीवन के केवल बत्तीस वर्ष (सन् 788-820) वेद, दर्शन, उपनिषद् तथा गीता के विचारों के प्रचार-प्रसार करने के लिए मिले। इतनी अल्पावधि में भी इस महापुरुष ने देश में वैचारिक क्रान्ति फैलाकर इस महान राष्ट्र को एक सांस्कृतिक रूप में संगठित कर दिया। इसे संसार का नवाँ आश्चर्य कहा जा सकता है। आपकी यात्रा का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है-

सांस्कृतिक, धार्मिक प्रचार यात्रा-उन्होंने अपनी यह यात्रा सर्वप्रथम अपने जन्म स्थान कालड़ि (केरल प्रान्त) से प्रारम्भ की। वे कालड़ि से सीधे चलकर नर्मदा तट पर औंकारेश्वर-माँधाता (वर्तमान मध्यप्रदेश) आये और यहाँ अपने गुरु गोविन्द पाद के दर्शन किये। इसी स्थान पर उन्होंने उत्तर मीमांसा-वेदांतसूत्र तथा ब्राह्मण ग्रन्थों का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त किया। जिज्ञासा और ज्ञान की भूख तृप्त करने के लिए आप इसके पश्चात् बनारस (काशी-धाम) गये और वहाँ वेदों के आध्यात्मिक पक्ष को लिपिबद्ध कर एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति की। यह कार्य पूर्ण कर स्वामी शंकराचार्य उत्तर भारत के शीर्ष पवित्र धाम बद्रीनाथ पहुँचे। यहीं पर साधनारत होकर उन्होंने वेदान्तसूत्र, भगवत्गीता, विष्णु सहस्त्रनाम और उपनिषदों पर विद्वतापूर्ण टीकाएं लिखी।

गंगा-यमुना परिक्षेत्र में:- बद्रीनाथ में अपना यह कार्य पूर्ण कर स्वामी शंकराचार्य प्रयाग (वर्तमान इलाहाबाद) त्रिवेणी संगम पधारे। यहाँ उनकी भेंट वेदों के विद्वान् कुमारिल भट्ट से हुई। कुमारिल भट्ट ने उनके सम्मुख महिष्मति (महेश्वर म.प्र.) के विद्वान् मण्डन मिश्र से शास्त्रार्थ करने की चर्चा की। स्वामी शंकराचार्य महिष्मति पधारे तथा वैदिक सिद्धान्तों को लेकर उन्हें शास्त्रार्थ में पराजित किया। इससे उनकी ख्याति बढ़ गई।

दक्षिण भारत की ओर प्रस्थान-महिष्मति से प्रस्थान कर स्वामी शंकराचार्य दक्षिण भारत के श्रीसेलम् नामक स्थान पर पहुँचे और यहाँ मल्लिकार्जुन लिंग और ब्रह्मम्बिका की अराधना की। तत्पश्चात् वे भारत के पश्चिमी तट पर स्थित गोकर्ण नामक स्थान पर कुछ समय तक विश्राम किया। कहते हैं, यहीं उन्होंने अपनी मान्यतानुसार भगवान शंकर के अर्द्ध नारीश्वर रूप की आराधना-पूजा अर्चना की।

श्रृंगेरी मठ की ओर:- गोकर्ण से प्रस्थान कर स्वामी जी अपने शिष्यों सहित श्रृंगेरी (दक्षिण भारत) पहुँचे तथा तुंगभद्रा नदी के तट पर तपस्या की। इसी स्थान पर आपने देवी माँ के नाम पर एक मन्दिर बनवाया जो कि श्रृंगेरी-मठ के नाम से विख्यात हुआ।

पूज्य माताजी का निधन:- जिन दिनों स्वामी शंकराचार्य श्रृंगेरी में तप कर रहे थे, उन्हें उनकी पूज्य माता आर्यम्बा के देहान्त की सूचना मिली। सूचना मिलते ही स्वामीजी कालड़ि ग्राम पहुँचे और अपनी माता का वैदिक विधि से अंतिम संस्कार सम्पन्न किया।

इस कार्य से निवृत्त होकर स्वामी शंकराचार्य भारत के अंतिम छोर रामेश्वरम् पहुँचे और कुछ समय तक तपस्यारत् रहे। वे यहाँ से काँचीपुरम गए और कामाक्षी मन्दिर में श्रीचक्र की स्थापना की। कुछ दिन यहाँ ठहरने के पश्चात् वे यहां से तिरूपति गए और भगवान वेंकटेश्वर की भक्ति-उपासना की। उन्हें और उनके शिष्यों को गीता-ज्ञान के प्रवर्तक भगवान श्रीकृष्ण की याद आई और वे यहाँ से भारत के उत्तर-पश्चिमी छोर द्वारका जा पहुँचे। यहाँ उन्होंने अनेकों शास्त्रार्थ किये और विजय प्राप्त की। यहीं पर उन्होंने गीता के दार्शनिक तत्वों का सूक्ष्म मनन और चिन्तन किया।

महाकाल की आराधना-ऐसा माना जाता है कि द्वारका में विजयश्री प्राप्त कर वे सीधे उज्जैन (वर्तमान मध्यप्रदेश) पुन: आये और महाकाल, भूतेश्वर की आराधना की। अभी तक के देशाटन में पूर्वी भारत के कुछ स्थान शेष रह गये थे। अत: वे उज्जैन से असम के कामरूप-क्षेत्र में जा पहुँचे। यहाँ उन्हें शाक्त सम्प्रदाय के अनेक विद्वानों से शास्त्रार्थ करना पड़ा। इन्हीं दिनों उन्होंने शाक्त सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य नवगुप्त को कई दिनों तक शास्त्रार्थ कर पराजित किया और अद्धैत मत का प्रचार किया।

जगन्नाथपुरी में आगमन- कामरूप प्रदेश में विजय पताका लहराने के पश्चात स्वामी शंकराचार्य दक्षिण-पूर्व में स्थित प्रसिद्ध तीर्थ स्थल

(शेष पृष्ठ 7 पर)

स्वामी शंकराचार्य के जीवन की एक झलक

- स्वामी शंकराचार्य का जन्म आज से प्राय: 1,224 वर्ष पूर्व 26 अप्रैल 788 ई. को दक्षिण भारत के केरल प्रदेश के कालड़ि ग्राम में हुआ था।
- इनके पिता शिवगुरु और माता का नाम आर्यम्बा था।
- इनका जन्म सन् 788 में कलाड़ि ग्राम में तथा मृत्यु सन् 820 में हुई। कालड़ि शब्द का अर्थ पैर के निशान।
- वे केवल अपनी आयु के 32 वर्ष ही प्राप्त कर सके। लेकिन इस अल्पावधि में भी आपने अद्वितीय कार्य कर दिखाया।
- पूर्वजन्म के संस्कार तथा धार्मिक माता-पिता द्वारा प्रदत्त वैदिक संस्कारों के कारण इन्होंने आठ वर्ष की आयु में सन्यास लेने की तीव्र इच्छा अपनी माता आर्यम्बा से प्रकट की।
- इनके गुरु और दीक्षा-आचार्य संत गोविन्द पाद थे। इन्हीं के चरणों में बैठकर उन्होंने ब्रह्मसूत्र (मीमांसा दर्शन-वेदान्त, उपनिषद् तथा श्री भगवतगीता का गहन अध्ययन किया। यही त्रयी विद्या है।
- इन्हीं तीन महान-ग्रन्थों के ज्ञान को आधार बनाकर आपने 'अद्वैतवाद' का प्रचार-प्रसार किया।
- इन्होंने श्रृंगेरी, द्वारका, बद्रीनाथ तथा पुरी में चार मठ बनाये।
- इनके पश्चात् ही प्राय: 8 सौ, 9 सौ वर्षो के पश्चात् महर्षि दयानन्द उत्पन्न हुए, जिन्होंने वेदों के आधार पर त्रेतवाद का प्रचार-प्रसार किया।

(पृष्ठ 1 का शेष)

की पाठशाला में प्रविष्ट करा दिया गया। शीघ्र ही विनायक के भीतर विद्यमान प्रतिभा प्रकट होने लगी। ज्यों-ज्यों उसे अक्षर ज्ञान होता गया त्यों-त्यों उसकी बुद्धि की प्रखरता निखरती गई और पढ़ने में दिनोंदिन उसकी रूचि बढ़ती गई।

पुस्तक और समाचार पत्र के लिए उसकी भूख भी उसी अनुपात में बढ़ती गई। पुस्तक अथवा समाचार पत्र को हाथ में लेने के बाद उसे आधोपांत पढ़ने के उपरान्त ही विश्राम लेना बालक विनायक का स्वभाव बन गया था। इस वय तक पहुँचते-पहुँचते विनायक मराठी में अच्छी कविता करने लगे थे, जिसका प्रमाण है उनकी आयु में रचित कविता का पूना के प्रसिद्ध मराठी दैनिक पत्र में प्रकाशित होना। समाचार-पत्र के सम्पादक यह अनुमान भी नहीं कर सकते थे कि जिस कविता को वे प्रकाशित कर रहे हैं उसका रचयिता केवल दस वर्ष का बालक है।

विनायक के पिता ने जब अपने पुत्र की काव्य प्रतिभा देखी तो उनको बड़ी प्रसन्ता हुई, किन्तु उस दिन तो वे बड़े आश्चर्यचकित रह गए जब उस आयु में उनका पुत्र आरण्यक जैसे गहन (शास्त्र ग्रंथ) पढ़ने लगा। उसके दो कारण थे। एक तो यह कि उस आयु में आरण्यक जैसे गहन शास्त्र ग्रंथों में रूचि होना और उसके गूढ़ रहस्यों को समझना तथा दूसरी बात थी आरण्यक को घर पर पढ़ना। उन दिनों यह किवदन्ती प्रचलित थी कि आरण्यकों को घर पर पढ़ना अशुभ होता है, उन्हें वन में पढ़ना चाहिए।

इतना ही नहीं अपने बालपन में ही उन्होंने धनुर्विधा और घुड़सवारी भी सीख ली थी। होनहार बिरवान के होत चीकने पात। अंग्रेजी के कवि मिल्टन का भी यही कहना है कि जिस प्रकार प्रभात को देखकर दिन का अनुमान लगा लिया जाता है कि धूप खिलेगी या बादल छाये रहेंगे, उसी प्रकार मनुष्य का बचपन बता देता है कि भविष्य में यह बालक कैसा बन सकता है। वह संयोग की बात थी कि विनायक जब दस वर्ष का था तभी संयुक्त प्रान्त के आजमगढ़ नगर में और फिर उसके बाद बम्बई में हिन्दू-मुस्लिम दंगे हो गए। मुसलमानों ने हिन्दुओं को जो यातनाएँ दीं, उसका विवरण जब विनायक ने सुना तो उसके मन में प्रतिकार की भावना उठी और उसने अपने साथियों की एक बटालियन बना ली और उसको लेकर समीप के गाँव में जा, मस्जिद पर पथराव किया। जिससे वह तहस-नहस हो गई। लौटते हुए उन्हें मुसलमानों के आक्रमण का सामना करना पड़ा, किन्तु उसमें भी उनको विजय ही मिली। उस समय उस बाल नेता को भली प्रकार समझ में आ गया कि उसे अपने दल को न केवल सुगठित करना होगा अपितु उसको सुशिक्षित भी करना होगा, तभी उनका प्रतिकार सफल हो सकता है।

काव्य प्रतिभा- सावरकर ने चाफेकर बन्धुओं के बलिदान पर एक ऐसा पोवाड़ा रचा जिसे जो भी सुनता उसकी आँखों से अश्रुधारा बह निकलती। स्कूल में भी उनके अध्यापक उनकी विलक्षण प्रतिभा के विषय में नित्य प्रति चर्चा करते थे। तभी नासिक के दैनिक पत्र नासिक वैभव में हिन्दुस्तान का गौरव शीर्षक से उनका लेख पत्र के सम्पादकीय के रूप में दो भागों में प्रकाशित हुआ। न केवल सामान्य पाठकों ने अपितु उनके अध्यापकों ने भी उस लेख की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। इससे उत्साहित होकर सावरकर नियमित रूप से कविता और लेख लिखने लगे। श्री राणाडे और श्री विनायक उनकी ओजस्वी कविताओं को पढ़कर ही सर्वप्रथम उनसे परिचित हुए थे। विनायक ने ग्रामीण समाज के लिए पोवाड़े लिखे जिनको बहुत ख्याति मिली।

सन् 1899 में सावरकर के पिता और चाचा, दोनों को ही प्लेग से देहान्त हो गया। इसके साथ ही उनके छोटे भाई नारायण पर भी प्लेग का प्रकोप हो गया। उसको पहले तो गाँव से दूर एक मन्दिर में रखा गया, किन्तु बाद में नासिक प्लेग अस्पताल में भर्ती करा दिया और उसके बड़े भाई गणेश सावरकर अपने जीवन को खतरे में डालकर उसकी देखभाल करते रहे, किन्तु एक दिन उनको भी प्लेग ने आ घेरा। तब तक उनका विवाह हो गया था। विनायक ने उनकी युवती पत्नी को इसकी सूचना नहीं दी और नासिक में रहकर भाइयों की सेवा करते रहे। ईश्वर ने उनकी प्रार्थना सुनी और दोनों भाई निरोग होकर घर लौट आये। कुछ दिनों बाद विनायक की महस्कर और दंगे नामक दो युवकों से मित्रता हो गई।

सावरकर के ये दो मित्र बड़े ही निष्ठावान देशभक्त थे। इन पर तिलक और परांजपे का प्रभाव था। परांजपे के विचार बड़े क्रान्तिकारी थे और वे अच्छे वक्ता भी थे। यही स्थिति सावरकर की भी थी। राजनीति में तीनों के विचार समान थे। सावरकर ने उन दोनों को अपनी ओर मिला लिया और उन तीनों ने मिलकर शपथपूर्वक देशभक्तों का दल निर्माण कर लिया। यह बात 1899 की है। 1900 का वर्ष आरम्भ होते इन तीनों ने मिलकर मित्र-मेला नामक एक संगठन भी खड़ा कर दिया। समय बीतते-बीतते यह मित्र-मेला बढ़कर 1904 में अभिनव भारत सोसाइटी के रूप में परिणत हुआ।

विद्यालय में सक्रिय जनवरी 1902 में सावरकर पूना के फर्गुसन कालेज में प्रविष्ट हुए। पूना में उन दिनों महादेव गोविन्द रानाडे की बड़ी ख्याति थी। यद्यपि वे सर्वात्मना कांग्रेसी नहीं थे, किन्तु उनके युग में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में उनके निर्देशों को मानना ही कांग्रेस का धर्म बन गया था। उन्हीं दिनों आर.पी. परांजपे इंग्लैण्ड में अपनी पढ़ाई समाप्त कर पूना लौटे थे और गोपाल कृष्ण गोखले कॉलेज के अन्तिम वर्ष पूर्ण कर राजनीति में प्रविष्ट होने का विचार कर रहे थे। तिलक नेता के रूप में उभरने लगे थे। शिवराम पन्त परांजपे अपनी मंत्रमुग्ध कर देने वाली वक्ता और लेखनी के कारण पूना की बड़ी हस्ती माने जाते थे। इस प्रकार पूना जहाँ एक ओर महाराष्ट्र का जीवन हृदय माना जाता था, वहां दूसरी ओर फर्गुसन कॉलेज ऐतिहासिक व्यक्यिों का जन्मदाता माना जाता था और ज्योंही सावरकर फर्गुसन कॉलेज में प्रविष्ट हुए उन्होंने महाराष्ट्र के इस प्रख्यात नगर में क्रान्ति का बीजोरोपन आरम्भ कर दिया। शीघ्र ही उन्होंने पूना में सावरकर ग्रुप का गठन कर लिया। कुछ ही दिनों में इस ग्रुप ने आर्यन वीकली के अतिरिक्त सावरकर अन्याय मराठी समाचार-पत्रों में भी अपनी कवितायें और लेख भेजने लगे।

प्रसिद्ध समाचार-पत्र काल के सम्पादक इनकी रचनाओं से अत्यधिक प्रभावित हुए। उनके माध्यम से ही सावरकर का लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक से परिचय हुआ। तिलक तो सावरकर की रचनाओं से अधिक उनके आकर्षण एवं तेजस्वी व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए थे। प्रथम भेंट के दिन से ही सावरकर इन दोनों के नियमित सम्पर्क में रहने लगे। सावरकर की वक्तता से तो प्रिंसिपल भी बहुत प्रभावित थे, यद्यपि आधुनिक राजनीति में उनके राजनीतिक विचारों से वे असहमत रहते थे। सावरकर के राजनीतिक विचारों से असहमत उनके प्राध्यापकगण उनकी वक्तता सुनकर उन्हें शैतान तक कह देते थे। काल के सम्पादक शिवराम पन्त परांजपे के सम्पर्क में आने के उपरान्त सावरकर पूना के सार्वजनिक जीवन में भी प्रख्यात होने लगे थे। यद्यपि जब तक उनका परांजपे से व्यक्तिगत परिचय नहीं हुआ था, तब किसी आर्थिक कठिनाई के समय उन्होंने परांजपे को लिखा था कि उनके पत्र में सहायक के रूप में कुछ कार्य मिल जाए, भले ही वह कार्य कम्पोजीटर का ही क्यों न हो, तो उनकी आर्थिक समस्या का कुछ समाधान हो जायेगा, किन्तु तब यह सम्भव नहीं हो पाया था और सावरकर को भी उन्हीं दिनों उनके श्वसुर की ओर से सहायता मिल गई। 1902 में सावरकर का परांजपे से परिचय हुआ और तभी उन्होंने कालश में एक लेख में लिखा हिन्दुस्तान की निर्धनता और विघटन के लिए हिन्दू उत्तरदायी हैं। यदि वे सम्पन्नता चाहते हैं तो उनको चाहिए कि वे हिन्दू बने रहें। इस लेख की सर्वत्र चर्चा और सराहना हुई।

विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार- धीरे-धीरे सावरकर ने पूना के जनसमाज में अपना स्थान बना लिया था। आचार्य काका कालेलकर जैसे व्यक्ति भी उनकी सराहना करते थे। सावरकर और उनके साथियों ने स्वदेशी का प्रचार और बंगाल विभाजन का बहिष्कार करना आरम्भ कर दिया था। तिलक ने बंगाल के विभाजन का अखिल भारतीय स्तर पर विरोध करना आरम्भ किया था। अक्टूबर 1905 को पूना की विशाल जनसभा में सावरकर ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की घोषणा कर दी और कहा कि विद्यार्थी दशहरे के दिन विदेशी वस्त्रों और अन्याय विदेशी वस्तुओं की होली जलायेंगे। केलकर और परांजपे ने सावरकर के आन्दोलन का उसी सभा में जोरदार शब्दों में समर्थन किया। इस प्रकार 7 अक्टूबर को गाड़ियों में भर-भर कर विदेशी वस्तुएँ एवं कपड़े एक स्थान पर लाये गये। इस प्रकार सर्वप्रथम पूना में विदेशी वस्तुओं की होली जलाई गई।

अप्रैल 2019 के आर्थिक सहयोगी एवम् नये ग्राहक

1.	अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म सेवा संघ-बिरला मन्दिर, नई दिल्ली	7200/-
2.	श्री लक्ष्मण देव छावड़ा जी, मानसरोवर गार्डन, नई दिल्ली	1000/-
3.	मुन्जाल शोवा लिमिटेड, मारूति इन्ड. एरिया, गुरुग्राम, हरियाणा	1100/-
4.	ब्रिगेडियर के.पी. गुप्ता जी, सैक्टर-15, फरीदाबाद, हरियाणा	1000/-
5.	आर्य समाज अनारकली, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली	1000/-
6.	आर्य समाज साकेत, नई दिल्ली-110017	800/-
7.	आर्य समाज इन्द्रा नगर-बेंगलौर, कर्नाटक	750/-
8.	श्री चतर सिंह नागर, महामन्त्री शुद्धि सभा दिल्ली	500/-
9.	आर्य समाज किरण गार्डन, नई दिल्ली	500/-
10.	श्री चन्द्र मोहन कपूर जी, आर्य समाज आर्य नगर, पहाड़गंज, नई दिल्ली	500/-
11.	श्री भरत भाई गौरी शंकर त्रिवेदी जी, मिठासपुर, जिला-देव भूमि, द्वारका	500/- आजीवन
12.	श्री शिव कुमार मदान जी, ट्रस्टी, जनकपुरी, नई दिल्ली	200/-
13.	श्रीमती सुशीला चावला जी, पीतमपुरा, दिल्ली	100/-

श्रीमती संतोष चावला जी द्वारा एकत्रित-दान-अप्रैल 2019

1.	श्रीमती वासंती चौधरी जी, आर्य महिला आश्रम, न्यू राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली	500/-
2.	श्रीमती सरला बिजलानी जी, आर्य महिला आश्रम, न्यू राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली	100/-
3.	श्रीमती संतोष बहल जी, आर्य महिला आश्रम, न्यू राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली	100/-
4.	श्रीमती सुदेश तलवार जी, आर्य महिला आश्रम, न्यू राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली	100/-
5.	श्रीमती कैलाश जी, आर्य महिला आश्रम, न्यू राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली	100/-
6.	श्रीमती कमला डाबर जी, आर्य महिला आश्रम, न्यू राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली	100/-
7.	श्रीमती कैथरीन जी, आर्य महिला आश्रम, न्यू राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली	100/-
8.	श्रीमती निर्मल शर्मा जी, आर्य महिला आश्रम, न्यू राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली	100/-
9.	श्रीमती इन्दू बिज जी, आर्य महिला आश्रम, न्यू राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली	50/-
10.	श्रीमती सन्तोष हिंगल जी, आर्य महिला आश्रम, न्यू राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली	50/-

कर्मचारी को भाई जैसा प्यार दो

कलकत्ता नगर में महामारी का प्रकोप था। न औषधि का ठिकाना था, न अन्तिम क्रिया का। लोग करुणाहीन और क्रूर बन गए थे। एक दिन पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जाने के लिए घर से निकले। मार्ग में एक मनुष्य पड़ा दिखाई दिया। वह सफाई कर्मचारी था। झाड़ू आदि उसकी वस्तुएं पास ही पड़ी थी। वह छटपटा रहा था। कितने ही लोग उस रास्ते से आ जा रहे थे। किन्तु किसी ने भी उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। पं. ईश्वरचन्द्र दौड़कर उसके पास गए। उन्होंने उसे हाथ लगाकर देखा। वह तीव्र ज्वर से पीड़ित था। उसकी बेहोशी जैसी स्थिति हो गई थी। ईश्वरचन्द्र विद्या के सागर ही नहीं थे, करुणा के भी सागर थे। उन्होंने उस मेहतर को अपनी पीठ पर उठाया और उसे अपने घर ले आये। उसे कपड़े पहनाये और बिस्तर पर लिटाया। फिर डाक्टर को बुलवाया और उसका उपचार कराया। देखभाल वह स्वयं करते थे। आस-पड़ोस के रूढ़िग्रस्त लोग पूछते-यह कौन है, कहां रहता है, क्या काम करता है। ईश्वरचन्द्र शान्त भाव से कहते-**यह मेरा भाई है**। हम दोनों एक ही काम करते हैं। यह बाहरी सफाई करता है, जब कि मैं भीतरी सफाई करता हूं। परिजनों और पड़ोसियों ने उन्हें बहुत धमकाया किन्तु वह टस से मस नहीं हुए। पन्द्रह दिन के बाद वह व्यक्ति स्वस्थ हो गया। जब वह जाने लगा तो ईश्वरचन्द्र ने कहा-मैं तुम्हारा भाई हूं। जब भी कोई जरूरत पड़े, निस्संकोच बताना और यह भाईचारा उन्होंने आजन्म निभाया।

-डा. माला मिश्र, दिल्ली

(पृष्ठ 5 का शेष)

'पुरी' (जगन्नाथपुरी) पधारे। यहाँ कुछ समय रूक कर आपने गीता और मीमांसा दर्शन (ब्रह्मसूत्र) का खूब प्रचार किया।

कश्मीर के शारदा मठ में:- स्वामी शंकराचार्य जगन्नाथपुरी से प्रस्थित होकर उत्तर भारत में सिरमौर कश्मीर में शारदा माँ के पवित्र स्थल पर अपना डेरा जमाया। यहाँ भी स्वामी शंकराचार्य को कश्मीर के अनेक ब्राह्मण-विद्वानों से शास्त्रार्थ करना पड़ा। अन्ततोगत्वा उनके गहन ज्ञान तथा तर्कों के आधार पर उन्हें विजयश्री प्राप्त हुई।

बद्रीनाथ में पुनरागमन:- कश्मीर में विजय दुन्दुभि बजाने के पश्चात् स्वामीजी बद्रीनाथ धाम पुन: आ विराजे। यहाँ वे लम्बे समय तक रहे और अद्वैतवाद का धुआंधार प्रचार कार्य किया। इसके पश्चात वे केदारनाथ आ गये।

अन्तिम कार्यस्थल:- स्वामी शंकराचार्य के जीवन का अन्तिम समय केदारनाथ में ही व्यतीत हुआ और यहीं वे अपने पंचभौतिक शरीर को छोड़कर पंचतत्व में विलीन हो गये। इस प्रकार इस महान धार्मिक और सांस्कृतिक योद्धा का अवसान हो गया। स्वामीजी के देहावसान के पश्चात् प्राय: 800-850 वर्षो तक वेद, दर्शन, उपनिषद् आदि का पुनरूत्थान करने वाला कोई महात्मा या सन्त उत्पन्न नहीं हुआ। हाँ, भगवान की कृपा तथा भारत के भाग्योदय से आज से प्राय: 150 वर्षो के पूर्व गुजरात के सौराष्ट्र प्रान्त के मोरवी राज्य के अन्तर्गत टंकारा ग्राम (राजकोट से 25-30 कि.मी.) में बालक मूलशंकर उत्पन्न हुआ, जो कालान्तर में महर्षि दयानन्द के नाम से विश्व-विख्यात हुआ। अद्वैतवाद के मूल तत्व-स्वामी शंकराचार्य का अद्वैतवाद तीन-''त्रिक'' पर आधारित है।

(1) एकमेव ब्रह्म द्वितीय नास्ति अर्थात्-संसार के सभी मनुष्य ब्रह्म है और ब्रह्म के अंश है।

(2) ब्रह्म संत्यम् जगत्मिथ्या इसका तात्पर्य यह संसार माया है नाशवान है। ब्रह्म ही भ्रमित होकर कालान्तर में जीव का रूप धारण करता है जैसे मकड़ी अपना जाल स्वयं बुनती है।

(3) जीव ही ब्रह्म का अंश- दर्शनशास्त्र के मीमांसा दर्शन के अन्तिम दर्शन (उत्तर मीमांसा) के अनुसार अखंड ब्रह्म का अंश यह जीव या आत्मा है। तुलसीदास जी के शब्दों में ईश्वर अंश जीव अविनाशी। अद्वैत का शाब्दिक अर्थ अ+द्वैत= उसके अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं केवल एक (ब्रह्म)। स्वामी शंकराचार्य के पश्चात् उनके शिष्यों ने इसी अद्वैतवाद का प्रचार किया।

मध्य युग में द्वैत, अद्वैत, विशिष्ट द्वैत, द्वैताद्वेत आदि दार्शनिक तत्वों का माधव, रामानुज आदि आचार्या ने प्रचार किया। कई स्थानों पर आचार्यो ने शास्त्रार्थ किये। इसी परम्परा के अन्तर्गत वेदों की दार्शनिक भूमि के आधार पर महर्षि दयानन्द ने त्रैतवाद को स्थापित किया। त्रैतवाद के अनुसार (1) ईश्वर (2) जीव और (3) प्रकृति अनादि है। जीव परमात्मा का अंश नहीं तथा प्रकृति उपादान कारण है।

स्वामी शंकराचार्य को दार्शनिक क्षेत्र में अद्वैतमत का प्रवर्तक माना जाता है ऐसे महान विद्वान् वैदिक सन्यासी को शत्-शत् प्रणाम।

R.N.I.No. 43084/76
Date of Publication 01-05-2019

Delhi Postal R.No. G-3/DL (N) 060/2018-20
Posting Date: 2-3 Every Month

सेवा में,

शुद्धि समाचार
मई-2019

एक मुट्ठी आटे में- वेद प्रचार

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की वेद प्रचार तथा शास्त्रार्थ किये, पत्र पत्रक, पुस्तकें, लिखी अन्ध विश्वास व पाखण्डों को दूरकरने के प्रयास किये। **सत्यार्थ प्रकाश** उनकी लिखी एक ऐसी पुस्तक है जिसने सोते हुए भारतीयों को जगा दिया और आज भी सबको प्रेरणा दे रही है। आर्य समाज विचारों की क्रान्ति का मंच है जहां वैदिक धर्म व भारतीय संस्कृति का प्रकाश जन जन के हृदय में अन्धकार की छाया का प्रतिकार कर रहा है आर्य समाज की प्रेरणा से अनेक क्रान्तिकारी स्वतन्त्रता हेतु बलिवेदी पर न्यौछावर हो गये ऐंसे अनेक वीर पुरुष हुए जिन्होंने वेद प्रचार हेतु अनेक यातनाएं सहीं दु:ख उठाए कष्ट उठाए राष्ट्र निर्माण हेतु अपने गरीब परिवारों को छोड़ दिया फिर पीछे मुड़ कर नहीं देखा।

ऐसे ही पण्डित दौलतराम जो आगरा निवासी ब्रह्मण थे आर्य समाजी थे बच्चों को पढ़ाने व वेद प्रचार करने की अधिक लगन थी उनका अपना परिवार अत्यन्त निर्धन था अपना घर छोड़ वह झांसी पहुँच गए वहां पाठशाला व अनाथालय खोला जहां बिना कोई शुल्क लिए बच्चों को पढ़ाना आरम्भ कर दिया, इस हेतु वहां के निवासियों अनाथालय के संचालन हेतु प्रतिदिन एक मुष्टि आटा घड़े में डालना आरम्भ कर दिया पण्डित दौलतराम बच्चों को पढ़ाने का कोई शुल्क नहीं लेते थे उन्होंने रविवार को आर्य समाज के सत्संग का आयोजन भी आरम्भ कर दिया। यह देखकर छावनी के अनेक सैनिक भी सत्संग में आने लगे कुछ सैनिकों ने पण्डित दौलतराम से सैनिक छावनी में भी सत्संग करने की प्रार्थना की। वहां छावनी में पण्डित दौलत राम ने सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास की कथा की कुछ आर्य समाज के विरोधियों ने इसकी शिकायत छावनी के अधिकारियों से की। पुलिस ने पण्डित दौलत राम पर दफा 108 का अभियोग चला दिया।

न्यायाधीश श्री जे.सी. स्मिथ थे उन्होंने 29-9-1908 को इस मामले में निर्णय करते हुए पण्डित दौलत राम को उत्तम व्यवहार के लिए झांसी के प्रतिष्ठित नागरिकों द्वारा नेक चलनी की दो जमानतें देने का अथवा एक वर्ष के कठोरतम कारावास का दण्ड दिया। न्यायाधीश का कहना था कि पंडित दौलत राम बच्चों से कोई शुल्क नहीं लेता अच्छे कपड़े पहनात है, उसने कुछ व्यक्तियों को इसलिए राजी किया है कि अपने घरों में रखे मटकों में प्रतिदिन एक मुट्ठी भर आटा डाल दिया करें उसके अनुसार प्रति सप्ताह तेतीस सेर आटा एकत्र हो उसे मिल जाता है।

झांसी के समाचार पत्रों ने जिला मजिस्ट्रेट स्मिथ के इस निर्णय की अत्यधिक आलोचना की थी। कहने का तात्पर्य यह है कि आर्य समाजी अपनी लगन व धुन के पक्के होते थे उन्होंने अपने घर परिवार की भी परवाह नहीं की वह संसार की भलाई के लिए ही जी परोपकार के लिए यातनाएं सही जेल गए आर्य समाज का कार्य संसार के उपकारार्थ ही तो है। सत्यासत्य के निर्णय के लिए है, **सत्यार्थ के प्रकाश** के लिए है। उनसे प्रेरणा लें आज तो हम स्वतन्त्र हैं वह

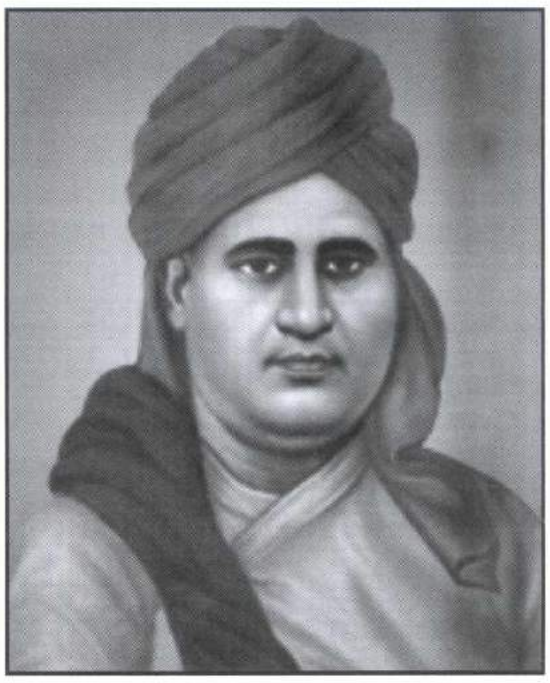

कठिन परिस्थितियां भी नहीं हैं। प्रचार कार्य और तीव्र करें।

-डॉ. बिजेन्द्र पाल सिंह
चन्द्र लोक कॉलोनी, खुर्जा,
मो. 8979794715

जीवन कलश

-विजय गुप्त-'आशु कवि'

जीवन कलश ज्ञान से भर दीजिए
हे ईश उपकार इतना कर दीजिए
तेरे सत्य को देखूँ वो नजर दीजिए
तेरी महिमा को गाऊँ वो स्वर दीजिए
मेरा तन तेरी तान की वीणा बने
हर शब्द इक अनमोल नगीना बने
हर बून्द में चमक हो तेरे रूप की
बरसती घटाओं का ऐसा महीना बने
मुझे बाँसुरी बना, अधर अपने लगा
लेकिन उपकार इतना कर दीजिए...
छेद ही छेद है हमारे तनों में
भेद ही भेद हैं हमारे मनों में
अपार शक्ति तेरी सिमटी हुई
बिखरे हुए इन धूल कणों में
मुझे ढोलक बना ताल अपनी लगा
उपकार इतना प्रभोवर कर दीजिए...
कहानी लिखी हुई बादलों पर तेरी
झंकार हमने सुनी बिजलियों से तेरी
फूल मुस्कान बिखेरे तेरे प्यार के
सुगंध सिमटी हुई कलियों में तेरी
मुझे घुंघरू बना, पांव से ठोकर लगा
पर उपकार इतना कर दीजिए
वेदों में तेरा तो प्रकाश है
उपनिषदों में तेरा विश्वास है
जो भी ग्रन्थ उठाऊँ सदज्ञान के
हर शब्द में तेरी ही आस है
मुझे शहनाई बना या ढोलक बना
हर ताल पर अपनी, थपकी लगा
चाहे घुंघरु बना के पांव से ठोकर लगा
हम पर उपकार इतना कर दीजिए
तेरी महिमा को गाऊँ वो स्वर दीजिए।

मुद्रक व प्रकाशक-रामनाथ सहगल द्वारा मयंक प्रिन्टर्स-2199/63, नाईवाला करोल बाग, नई दिल्ली-110005, से मुद्रित एवं
भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा, 6949, बिड़ला लाइन दिल्ली-7, दूरभाष: 9711258445, 9718550459 से प्रकाशित। सम्पादक: आचार्य गवेन्द्र शास्त्री, सह-सम्पादक: डॉ. देवेश प्रकाश आर्य